

Title-वाकाटक

(B.A. Second Year, Forth Semestar)

Dr. Rajesh Kumar Tripathi

Assistant Professor

Ancient Indian History & Archaeology

वाकाटक शब्द का प्रयोग प्राचीन भारत के एक राजवंश के लिए किया जाता है जिसने तीसरी सदी के मध्य से छठी सदी तक शासन किया था। उस वंश को इस नाम से क्यों संबंधित किया गया, इस प्रश्न का सही उत्तर देना कठिन है। शायद वकाट नाम का मध्यभारत में कोई स्थान रहा हो, जहाँ पर शासन करनेवाला वंश वाकाटक कहलाया। अतएव प्रथम राजा को अजंता लेख में "वाकाटक वंशकेतुः" कहा गया है। इस राजवंश का शासन मध्यप्रदेश के अधिक भूभाग तथा प्राचीन बरार (आंध्र प्रदेश) पर विस्तृत था, जिसके सर्वप्रथम शासक **विन्ध्यशक्ति** का नाम वायुपुराण तथा अजंतालेख में मिलता है। संभवतः विन्ध्य पर्वतीय भाग पर शासन करने के कारण प्रथम राजा 'विन्ध्यशक्ति' की पदवी से विभूषित किया गया। इस नरेश का प्रामाणिक इतिवृत्त उपस्थित करना कठिन है, क्योंकि विन्ध्यशक्ति का कोई अभिलेख या सिक्का अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका। तीसरी सदी के मध्य में सातवाहन राज्य की अवनति हो जाने से विन्ध्यशक्ति को अवसर मिल गया तो भी उसका यश स्थायी न रह सका। उसके पुत्र **प्रथम प्रवरसेन** ने वंश की प्रतिष्ठा को अमर बना दिया। अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि प्रथम प्रवरसेन ने दक्षिण में राज्यविस्तार के उपलक्ष में चार अश्वमेध किए और सम्राट की पदवी धारण की।

प्रवरसेन के समकालीन शक्तिशाली नरेश के अभाव में वाकाटक राज्य आंध्रप्रदेश तथा मध्यभारत में विस्तृत हो गया। बघेलखंड के अधीनस्थ शासक व्याघ्रराज का उल्लेख समुद्रगुप्त के स्तंभलेख में भी आया है। संभवतः प्रवरसेन ने चौथी सदी के प्रथम चरण में पूर्वदक्षिण भारत, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ पर अधिकार कर लिया था परंतु इसकी पुष्टि के लिए सबल प्रमाण नहीं मिलते। यह तो निश्चित है कि प्रवरसेन का प्रभाव दक्षिण में तक फैल गया था। परंतु कितने भाग पर वह सीधा शासन करता रहा, यह स्पष्ट नहीं है। यह कहना सर्वथा उचित होगा कि वाकाटक राज्य को साम्राज्य के रूप में परिणत करना उसी का कार्य था। प्रथम प्रवरसेन ने वैदिक यज्ञों से इसकी पुष्टि की है। चौथी सदी के मध्य में उसका पौत्र प्रथम रुद्रसेन राज्य का उत्तराधिकारी हुआ, क्योंकि प्रवरसेन का ज्येष्ठ पुत्र गोतमीपुत्र पहले ही मर चुका था। वाकाटक वंश के तीसरे शासक महाराज **रुद्रसेन प्रथम** का इतिहास अत्यंत विवादास्पद माना जाता है। प्रारंभ में वह आपत्तियों तथा निर्बलता के कारण अपनी स्थिति को सबल न बना सका। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि उसके पितृव्य साम्राज्य को विभाजित कर शासन करना चाहते थे, किन्तु पितृव्य सर्वसेन के अतिरिक्त किसी का वृत्तांत प्राप्य नहीं है। वाकाटक राज्य के दक्षिण-पश्चिम भाग में सर्वसेन ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था जहाँ (बरार तथा आंध्र प्रदेश का उत्तरी-पश्चिमी भूभाग) उसके वंशज पाँचवी सदी तक राज्य करते रहे। इस प्रसंग में यह मान लेना सही होगा कि उसके नाना भारशिव महाराज भवनाग ने रुद्रसेन प्रथम की विषम परिस्थिति में सहायता की, जिसके फलस्वरूप रुद्रसेन अपनी सत्ता को दृढ़ कर सका। (चंपक ताम्रपत्र का. इ., इ. भा. ३, पृ. २२६) इस वाकाटक राजा के विनाश के संबंध में कुछ लोगों की असत्य धारण बनी हुई है कि गुप्तवंश के उत्थान से रुद्रसेन प्रथम नष्ट हो गया। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने कौशांबी के युद्ध में वाकाटक नरेश रुद्रसेन प्रथम को मार डाला (अ. भ. ओ. रि. इ., भा. ४, पृ. ३०-४०, अथवा उत्तरी भारत की दिग्विजय में उसे श्रीहत कर दिया। इस कथन की प्रामाणिकता समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में उल्लिखित पराजित नरेश रुद्रदेव से सिद्ध करते हैं। प्रशस्ति के विश्लेषण से यह समीकरण कदापि युक्तियुक्त नहीं है कि रुद्रदेव तथा वाकाटक महाराज प्रथम रुद्रसेन एक ही व्यक्ति थे।

वाकाटकनरेश से समुद्रगुप्त का कहीं सामना न हो सका। अतएव पराजित या श्रीहत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत यह कहना उचित होगा कि गुप्त सम्राट् ने वाकाटक वंश से मैत्री कर ली। वाकाटक अभिलेखों के आधार पर यह विचार व्यक्त करना सत्य है कि इस वंश की श्री कई पीढ़ियों तक अक्षुण्ण बनी रही। कोष, सेना तथा प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि पिछले सौ वर्षों से होती रही (मानकोष दण्ड साधनसंतान पुत्र पौत्रिण : ए. इ., भा. ३, पृ. २६१) इसके पुत्र पृथ्वीषेण प्रथम ने कुंतल पर विजय कर दक्षिण भारत में वाकाटक वंश को शक्तिशाली बनाया। उसके महत्वपूर्ण स्थान के कारण ही गुप्त सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त को (ई. स. ३८० के समीप) अपनी पुत्री का विवाह युवराज रुद्रसेन से करना पड़ा था। इस वैवाहिक संबंध के कारण गुप्त प्रभाव दक्षिण भारत में अत्यधिक हो गया। फलतः द्वितीय रुद्रसेन ने सिंहासनारूढ़ होने पर अपने श्वसुर का कठियावाड़ विजय के अभियान में साथ दिया था।

द्वितीय रुद्रसेन की अकाल मृत्यु के कारण उसकी पत्नी **प्रभावती गुप्ता** अप्राप्तवयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन करने लगी। वाकाटक शासन का शुभचिंतक बनकर द्वितीय चंद्रगुप्त ने सक्रिय सहयोग भी दिया। पाटलिपुत्र से सहकारी कर्मचारी नियुक्त किए गए। यही कारण था कि प्रभावती गुप्ता के पूनाताम्रपत्र में गुप्तवंशावली ही उल्लिखित हुई है। कालांतर में युवराज दामोदरसेन द्वितीय प्रवरसेन के नाम से सिंहासन पर बैठा, किंतु इस वंश के लेख यह बतलाते हैं कि प्रवरसेन से द्वितीय पृथ्वीषेण पर्यंत किसी प्रकार का रण अभियान न हो सका। पाँचवीं सदी के अंत में राजसत्ता वेणीमशाखा (सर्वसेन के वंशज) के शासक हरिषेण के हाथ में गई, जिसे अजंता लेख में कुंतल, अवंति, लाट, कोशल, कलिंग तथा आंध्र देशों का विजेता कहा गया है (इंडियन कल्चर, भा. ७, पृ. ३७२) उसे उत्तराधिकारियों की निर्बलता के कारण वाकाटक वंश विनष्ट हो गया।

अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में वाकाटक राज्य वैभवशाली, सबल तथा गौरवपूर्ण रहा है। सांस्कृतिक उत्थान में भी इस वंश ने हाथ बटाया था। प्राकृत काव्यों में "सेतुबंध" तथा "हरिविजय काव्य" क्रमशः प्रवरसेन द्वितीय और सर्वसेन की रचना माने जाते हैं। वैसे प्राकृत काव्य तथा सुभाषित को "वैदर्भी शैली" का नाम दिया गया है। वाकाटकनरेश वैदिक धर्म के अनुयायी थे, इसीलिए अनेक यज्ञों का विवरण लेखों में मिलता है। कला के क्षेत्र में भी इसका कार्य प्रशंसनीय रहा है। अजंता की चित्रकला को वाकाटक काल में अधिक प्रोत्साहन मिला, जो संसार में अद्वितीय भित्तिचित्र माना गया है। नाचना का मंदिर भी इसी युग में निर्मित हुआ और उसी वास्तुकला का अनुकरण कर उदयगिरि, देवगढ़ एवं अजंता में गुहानिर्माण हुआ था। समस्त विषयों के अनुशीलन से पता चलता है कि वाकाटक नरेशों ने राज्य की अपेक्षा सांस्कृतिक उत्थान में विशेष अनुराग प्रदर्शित किया। यही इस वंश की विशेषता है।

शासक

- विन्ध्यशक्ति (250-270)
- प्रवरसेन प्रथम (270-330)

प्रवरपुर-नन्दिवर्धन शाखा

- रुद्रसेन प्रथम (330-355)
- पृथ्वीसेन प्रथम (355-380)
- रुद्रसेन द्वितीय (380-385)
- प्रभावतीगुप्ता (385-405)
- दिवाकरसेन (385-400)

- दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) (400-440)
- नरेन्द्रसेन (440-460)
- पृथ्वीसेन द्वितीय (460-480)

वत्सगुल्म शाखा

- सर्वसेन तृतीय (330-355)
- विन्ध्यसेन (विन्ध्यशक्ति द्वितीय) (355-400)
- प्रवरसेन द्वितीय (400-415)
- अज्ञात (415-450)
- देवसेन (450-475)
- हरिषेण (475-500)